प्रतिक्रमण का पहला चरण : आत्मनिरीक्षण

आचार्य श्री महाप्रज्ञ

व्रत जीवन को मर्यादित एवं संयमित बनाते हैं। व्रतविहीन व्यक्ति के मन में दोष शीघ्र प्रवेश कर जाते हैं। व्रतों के पालन में भी कहीं कोई छिद्र रह सकता है। अतः उसके निवारण हेतु प्रतिक्रमण आवश्यक है। प्रतिक्रमण का पहला चरण है- आत्मनिरीक्षण। आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने प्रस्तुत आलेख में आत्मनिरीक्षण का महत्त्व स्थापित किया है। -*सम्पादक*

आध्यात्मिक भूमिका पर व्यक्ति आत्मिक विकास के लिए नियमों में रहता है अर्थात् वह बिना व्रत-ग्रहण किए नहीं रहता, खुला नहीं रहता। क्योंकि खुले रहने में असुरक्षा है। आध्यात्मिक क्षेत्र में ही नहीं संसार में भी खुली वस्तुएँ असुरक्षित हैं। जैसे- दूध का पात्र खुला पड़ा है तो भीतर मक्खी पड़ने की संभावना रहती है। इसीलिए उस पर ढक्कन दे देते हैं। घर की छत को कोई खुला नहीं रखता। प्रत्येक घर की छत बन्द होती है, इसलिए कि धूप से बचाव हो सके, सर्दी-गर्मी से बचाव हो सके, आँधी और वर्षा से बचाव हो सके। प्रत्येक घर में दरवाजे लगे हुए हैं, इसलिए कि हर कोई उसमें न घुस जाए। वांछित आए, किन्तु अवांछित न आए। प्रत्येक व्यक्ति ने हर दृष्टि से सुरक्षा की व्यवस्था कर रखी है। आध्यात्मिक व्यक्ति भी सुरक्षा की व्यवस्था रखता है।

भौतिकवाद : अध्यात्मवाद

आज की दुनिया दो वादों में बँटी हुई है-भौतिकवाद और अध्यात्मवाद। दार्शनिक भाषा को छोड़ दें, केवल अध्यात्मशास्त्रीय भाषा में बात करें तो कहा जा सकता है-जो व्यक्ति सर्वथा खुला है, मानना चाहिए कि वह पदार्थवादी आदमी है। जिस व्यक्ति ने अपनी खुलावट पर कोई ढक्कन रख छोड़ा है, छत बनाई है, किवाड़ लगाए हैं, उसका नाम है अध्यात्मवादी। अध्यात्मवादी बिल्कुल खुला नहीं रहता, कहीं न कहीं आवरण जरूर रखता है। इसलिए रखता है कि यह जगत् अनेक मलिनताओं का घर है। राग और द्वेष की मलिनता का निरंतर विकिरण हो रहा है।

संक्रामक है दुनिया

आजकल अणुधूलि का विकिरण बहुत हो रहा है। केवल उन राष्ट्रों में ही नहीं, जिन्होंने अणु विस्फोट किये हैं, किन्तु उनमें भी अणु-विकिरण हो रहा है, जहाँ अणु-परीक्षण नहीं हुए हैं। इसीलिए आज कहा जाता है कि दूध को बिना उबाले न पिया जाए। पहले यह कहा जाता था कि दूध को बिना उबाले पिया जाए। आज तो पानी भी बिना उबाले पीने लायक नहीं रह गया है। कहा जा रहा है कि सचित्त का त्याग हो या न हो, उबला हुआ पानी ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पिया जाए। बडे शहरों में तो यह अनिवार्य-सा हो गया है। डाक्टर यह भी सुझाव देते हैं कि उबाले बिना फल भी न खाया जाए। सचित्त और अचित्त से भी मुख्य प्रश्न हो गया है स्वास्थ्य और बीमारी का। इसका कारण स्पष्ट है। कुछ न कुछ ऊपर से आ रहा है, ज़हर के रूप में बरस रहा है और नीचे से भी आ रहा है। उर्वरकों और रसायनों के रूप में धरती पर जो घोला जा रहा है, उसके परिणाम क्या लाभकारी होंगे? प्रत्येक आदमी के पेट में रोज अन्न-पानी के साथ निश्चित मात्रा में ज़हर प्रवेश कर रहा है। बचाव का कोई रास्ता नहीं है। ऐसा बचा ही क्या है, जिसके साथ में ज़हर न जाए? एक प्रकार से पूरी दुनिया ही संक्रामक हो गई है।

मानसिक स्तर पर

मानसिक स्तर पर देखें। मन पर कितना विकिरण हो रहा है? राग-द्वेष प्रायः हर व्यक्ति में हैं। अणु-विस्फोटों ने अणुधूलि का जितना विकिरण किया है और जितनी बीमारी की संभावनाएँ पैदा की हैं क्या मानसिक स्तर पर उससे कम विकिरण हो रहा है? पूरा वायुमंडल ही राग-द्वेष के परमाणुओं से भरा है। इस अवस्था में उस पर कोई ढक्कन न डालें तो वह कितना भारी और बोझिल बन जायेगा। मानसिक समस्याएँ इसीलिए बढ़ रही हैं। एक भाई ने अपनी समस्या प्रस्तुत की- ''मन इतना चंचल और बेचैन रहता है कि उस पर अब मेरा कोई नियंत्रण ही नहीं रह गया। अनेक दुष्कल्पनाएँ निरंतर आती रहती हैं, इसका कारण क्या है?'' मैंने कहा- ''कारण तो बहुत साफ है। जब तक मन पर कोई ढक्कन नहीं डालोगे, तब तक ऐसा चलता रहेगा।''

महत्त्व व्रत का

भारतीय चिंतन में व्रत का बहुत महत्त्व रहा है। इसका बहुत विकास भी हुआ है। इस शब्द का मूल अर्थ है आच्छादन या आवरण । संस्कृत की धातु है 'वृतु वरणे' अर्थात् आच्छादन कर देना। किसी चीज को ढाक देने का नाम है व्रत। छत बना ली, व्रत हो गया। मन पर एक छप्पर डाल दिया, व्रत हो गया। कुछ नहीं डाला, मन खुला रह गया तो हर चीज घुस जायेगी। खुले घर में चोर-उचक्के घुस सकते हैं और जंगली जानवर भी घुस सकते हैं।

एक पंडित यात्रा पर निकला। जंगल में उसे भूख लगी। एक जगह को साफ कर उसे लीपा और चूल्हा बनाया। फिर ईंधन इकट्ठा करने कुछ दूर निकल गया। वापस आया तो देखा, वहाँ एक गधा बैठा है। चौका खुला था, गधे को वहाँ बैठने से कौन रोक सकता था? पंडित हैरान रह गया। वह बोला- ''गर्दभराज! कोई दूसरा इस तरह आकर बैठा होता तो उससे कहता- देखते नहीं, गधे हो क्या? जब आप स्वयं यहाँ आकर विराज गए हैं तो क्या कहूँ, आपको क्या उपमा दूँ।''

संस्कार व्रत का

घर खुला रहेगा तो उसमें गधा भी घुसेगा और कुत्ता भी। यह खुलावट एक बड़ी समस्या है। इसीलिए जीवन में व्रत का विधान किया गया है। पुराने संत लोगों को इस भाषा में समझाया करते थे- ''भाई! अधिक नहीं हो तो कम से कम एक व्रत ले लो कि कौए को नहीं मारूँगा, किसी चिड़िया को नहीं मारूँगा। कौए को मारने का कब कितना काम पड़ता है? लेकिन यह इसलिए कहा जाता था कि इससे एक संस्कार शुरू होता था। जीवन में कोई न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई छोटा सा व्रत या त्याग होना ही चाहिए, क्योंकि व्रत का बड़ा महत्त्व है। जिस व्यक्ति ने इसका मूल्यांकन किया है, उसने एक तरह से अपनी मानसिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया है। मन की गति बहुत तीव्र है। विज्ञान अभी तक ऐसा कोई यंत्र विकसित नहीं कर पाया है, जो इसकी रफ्तार को माप सके। जब इतनी तेज रफ्तार हो और उस पर कोई नियंत्रण न हो तो दुर्घटना अवश्यंभावी है। मन के अश्व की लगाम हाथ में होनी चाहिए। व्रत का मतलब है मन की लगाम को अपने हाथ में लेना, मन की डोर अपने हाथ में रखना।

आत्म-निरीक्षण

व्रत होने पर भी मन की चंचलता विद्यमान है। चंचलता एकदम समाप्त नहीं हुई है। छत में भी कभी-कभी कोई दरार या छेद रह जाता है। किवाड़ में भी सुराख रह जाता है, दरवाजे ढीले रह जाते हैं। इसके लिए क्या करना चाहिए? उपाय बताया गया - प्रतिक्रमण करो। प्रतिक्रमण का पहला कार्य है आत्मनिरीक्षण। अपने आपको देखना शुरू करें। बडा कठिन काम है अपने आपको देखना। हमारी इन्द्रियों की बनावट ही ऐसी है कि इनके द्वारा हम बाह्य जगत् से सम्पर्क स्थापित करते हैं। वहाँ दूसरा ही दूसरा नजर आता है, अपने नाम का कोई तत्त्व वहाँ नहीं है। आँख का काम है देखना। हम दूसरों को देखेंगे। कान का काम है सुनना। हम दूसरों की बात सुनेंगे। हमारी प्रकृति ही ऐसी बन गई है कि इन्द्रियाँ केवल बाहर ही केन्द्रित रहती हैं, स्व-दर्शन बिल्कुल विस्मृति में चला जाता है। आत्मनिरीक्षण का अर्थ है अपने आपको देखना। आँख खुली हो या बन्द, उससे अपने आपको देखें। अपने आचरण को देखें, अपने कर्तव्य को देखें, क्रियमाण को देखें और करिष्यमाण को भी देखें।

धार्मिक लक्षण

आत्मनिरीक्षण प्रतिक्रमण का पहला चरण है। जो आत्म-निरीक्षण करना नहीं जानता, वह शायद धार्मिक नहीं हो सकता और आध्यात्मिक तो हो ही नहीं सकता। धार्मिक होने का सबसे बड़ा सूत्र है अपने आपको देखना। किसी ने झगड़ा किया, गाली दी। उससे पूछा जाए कि ऐसा क्यों किया? वह यही कहेगा कि मैं क्या करूँ? उसने मुझे गाली दी तो मैंने भी दी। यह कभी नहीं कहेगा कि मैंने दी। सदा यही कहेगा कि पहले उसने दी इसलिए मैंने भी दी। व्यक्ति हर बात में दूसरे को सामने रखता है। किसी से पूछा जाए कि तुमने ऐसा क्यों किया? यही उत्तर मिलता है मुझे ऐसा करना पड़ रहा है। वह ऐसा कर रहा है तो मैं क्यों न करूँ? यह कभी स्वीकार नहीं करेगा कि मेरी भूल हुई है। मैंने जो किया या कर रहा हूँ, वह अच्छा नहीं है। दूसरे पक्ष का भी यही उत्तर होगा। दोनों ही अपने को निर्दोष बतायेंगे। दोष कहाँ है, इसका पता ही नहीं चल पाता। यह सब इसलिए हो रहा है कि आत्मनिरीक्षण नहीं है। आत्मनिरीक्षण की भावना जाग जाए तो व्यक्ति यही कहेगा कि हाँ, मेरी भूल हुई है।

आध्यात्मिक व्यक्ति वह होता है, जो प्रत्येक स्थान पर यह देखता है कि मेरी कमी कहाँ है ? जहाँ दूसरा आता है, अध्यात्मवाद वहीं समाप्त हो जाता है। जो अपने आपको धार्मिक और आध्यात्मिक मानते हैं, क्या वे ऐसा आचरण नहीं कर रहे हैं, जो एक भौतिकवादी करता है। यदि एक धार्मिक व्यक्ति ऐसा कहे कि दूसरे ने मेरे साथ ऐसा किया इसलिए हम भी वैसा कर रहे हैं तो मानना चाहिए कि वह धार्मिक बना ही नहीं है। निश्चय ही उसका मस्तिष्क

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभी भौतिकवादी बना हुआ है। इसलिए वह स्वयं की ओर से आँख मूँद कर दूसरों पर दोषारोपण करता है।

एक संन्यासी जा रहा था। रास्ते में देखा- एक स्त्री पेड़ के नीचे लेटी हुई है। पास में ही एक बोतल रखी हुई है। एक पुरुष उस स्त्री के समीप बैठा उसके सिर पर हाथ फेर रहा है। संन्यासी की भृकुटि तन गई। वह कठोर वाणी में बोला- ''संध्या का समय है। धर्मध्यान करने के समय तुम ऐसा निकृष्ट आचरण क्यों कर रहे हो ?'' अनेक दुर्वचन कहता हुआ वह संन्यासी आगे बढ गया। सामने कलकल नदी बह रही थी। उसी समय नदी में बहती हुई एक नौका तेज हवा में जोर से डगमगाई। कई आदमी लड़खड़ा कर नदी में गिर गए। पेड़ के नीचे बैठा आदमी यह दृश्य देखकर क्षण भर का विलंब किये बिना दौड़ता हुआ आया और पानी में कूद गया। स्वयं की परवाह न करते हुए उसने तैर कर एक-एक कर सब लोगों को पानी से निकाला और फिर चुपचाप पेड़ के नीचे उस स्त्री के पास चला गया। संन्यासी अपनी आँखों से यह सारा दृश्य देख अवाक् रह गया। वह पुनः पेड़ के पास गया और बोला- ''भाई, तुमने तो बड़ा उपकार का कार्य किया है, साधुवाद है तुम्हें। वह व्यक्ति बोला- ''मुझे आपका साधुवाद नहीं चाहिये। आप संन्यासी जैसे दीखते जरूर हैं, किन्तु मैं आपको संन्यासी नहीं मानता। बिना कुछ ध्यान दिये आपने मुझ पर घृणित आरोप लगा दिया और आप नहीं जानते हैं यह मेरी माँ है, जो बीमार है और यह शराब की नहीं दवा की बोतल है।''

जहाँ व्यक्ति दूसरे को देखता है वहाँ आरोप की भाषा चलती है। प्रत्येक घटना में अपने आपको देखना शुरू कर दें तो जीवन में एक अपूर्व परिवर्तन की अनुभूति होने लगेगी। प्रतिक्रमण का पहला चरण शुरू हो जायेगा, जीवन की बहुत सारी समस्याएँ सुलझनी शुरू हो जायेंगी।

आत्म-निरीक्षण का प्रारूप

भगवान् महावीर ने आत्मनिरीक्षण की सुन्दर विधि प्रतिपादित की। प्रत्येक व्यक्ति यह अनुशीलन करे-

किं मे कडं- आज मैंने क्या किया?

किं च मे किच्चसेसं - मेरे लिए क्या कार्य करना शेष है?

किं सक्किणिज्जं न समायरामि- वह कौन सा कार्य है जिसे मैं कर सकता हूँ, पर प्रमादवश नहीं कर रहा हूँ।

किं मे परो पासइ किं व अप्पा- क्या मेरे प्रमाद को कोई दूसरा देखता है अथवा मैं अपनी भूल को स्वयं देख लेता हूँ।

किं वाहं खलियं न विवज्जयामि - वह कौनसी स्खलना है, जिसे मैं छोड़ नहीं रहा हूँ।

यह आत्मनिरीक्षण का एक प्रारूप है। जो व्यक्ति इसके अनुसार आत्मनिरीक्षण करता रहता है वह सचमुच प्रतिक्रमण की दहलीज पर पाँव रख देता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org